



## वैश्वीकरण के दौर में दलितों की प्रस्थिति एवं अस्मिता का एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

डॉ. सूर्यकान्त भारती

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,

साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, बिजनौर।

### सार

वर्तमान का युग वैश्वीकरण का युग कहलाता है। भारत में ये 1991 से लागू हुआ। इस संदर्भ में पिछले लगभग 30 सालों में जो कुछ भी प्रक्रिया या प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं व लाभ एवं हानि समेत उन सब पर वैश्वीकरण का प्रभाव माना जाता है। इसलिए वैश्वीकरण का प्रभाव विभिन्न पहलु पर जैसे कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, परिवार, विवाह, नातेदारी जाति, धर्म आदि पर मूल्यांकन करना अनिवार्य है। इसका समाजशास्त्रीय मूल्यांकन भी एक चुनौती है इसलिए मैंने समाज के सबसे पिछड़े हुए समुदाय दलितों के ऊपर वैश्वीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन करने का निर्णय लिया है। नई आर्थिक नीतियों से दलितों को लाभ हुआ है क्योंकि निजीकरण और बाजारीकरण की प्रक्रिया उस सार्वजनिक उद्यम (पब्लिक सेक्टर) को तोड़ रही है जो अपने स्वभाव में दकियानूसी सोच के थे। अगर हम दलितों की प्रस्थिति पर वैश्वीकरण के प्रभाव का विश्लेषण करें तो वह विदित होता है कि भारत की सभी क्षेत्रों में वैश्वीकरण का प्रभाव रहा है और वहाँ की सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया है चाहे वह सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र रहा हो। अब उनकी स्थिति में सुधारात्मक परिवर्तन आया है फिर भी अन्य समुदायों की तुलना में उनकी स्थिति निम्न है।

### परिचय

वैश्वीकरण का तात्पर्य एक ऐसे विश्व से है, जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं और दूरियों से परे एकीकृत व्यवस्था, प्रावधान एवं प्रक्रियाओं में समानता हो। वैश्वीकरण का अर्थ है देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत कर देना। इसका अर्थ है राष्ट्रीय सीमाओं के पार वस्तुओं एवं सेवाओं, पूंजी, तकनीकी एवं श्रम का प्रवाह (गिडेन्स, 1990)। आज लगभग हर देश में वैश्वीकरण का दौर चल रहा है भारत भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं है। इस वैश्वीकरण ने जाति-जनजाति समूहों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित किया है। भारतीय समाज में किसी भी प्रक्रिया की परख जातियों पर उसके प्रभावों से ही की जाती है। इस कारण से वैश्वीकरण के प्रभाव को भारतीय समाज के ऊपर देखने का सबसे मुख्य आधार जाति है (कुमार, 2014)। भारत में पिछड़े वर्ग की जातियों एवं मुस्लिम समुदाय के बाद दलितों की आबादी है जो लगभग 16.6 प्रतिशत है।

भारतीय समाज में अनेक सामाजिक समूह एवं श्रेणियाँ पायी जाती हैं, जिनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति पर्याप्त रूप से भिन्न हैं। कुछ सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से प्रतिष्ठा सम्पन्न हैं। कुछ तो समूह ऐसे हैं जो सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़े हैं। इनमें बहुत तो ऐसे हैं जो निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। इन समूहों को दुर्बल वर्ग कहा जाता है। सामाजिक दृष्टि से दुर्बल वर्ग को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। इसी वर्ग में दलित शामिल है (ओमवेत, 2009)।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा दलितों के सशक्तिकरण तथा विकास की वैश्विक की संरचना समुचित भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु किये गये अनेक प्रयासों के बावजूद दलितों की प्रस्थिति में आशानुकूल सुधार नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में ये प्रश्न उठ रहे हैं कि कहीं नवीनतम सरकारी दृष्टिकोण एवं वैश्वीकरण दलितों की प्रस्थितियों को और भी गम्भीर तो नहीं बना रहे हैं। क्या समावेशी विकास सुनिश्चित हो रहा है? क्या सभी क्षेत्रों के विकास के साथ-साथ दलितों के सर्वांगीण विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है या वैश्वीकरण से प्रभावित परिवेश में दलितों की

सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार हेतु क्या-क्या प्रयास किए हैं? इसी तरह अन्य प्रश्न भी जनमानस के मनो-मस्तिष्क में उमड़ रहे हैं जिनका उत्तर मिलना अति आवश्यक है। अतः दलितों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति का तथ्यपरक अध्ययन पर वैश्वीकरण एवं उनसे प्रभावित नवीनतम सरकारी दृष्टिकोण का दलितों की प्रस्थिति एवं अस्मिता पर पड़ने वाले प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया जाना प्रासंगिक है।

योगेन्द्र सिंह (1976) का कहना है कि अनुसूचित जातियों में जिस परिवर्तन की अपेक्षा थी, वह कहीं देखने को नहीं मिला। अब भी ये हरिजन कच्चे मकान में रहते हैं और जो भी विशेषाधिकार मिले हैं उसका प्रयोग भी पूरी तरह से नहीं कर पा रहे हैं। परिवर्तन तो तब समझा जायेगा जब जातियों की सोपान व्यवस्था में उनका स्थान ऊँचा उठ पाये। यह ठीक है कि अछूतों ने अपने आप में सुधार किया है। अब वे नहाने और कपड़े धोने में साबुन का प्रयोग करने लेने लगे हैं। चाय पीने लगे हैं और आधुनिक नाश्ते करते हैं। लेकिन ये सब परिवर्तन ऊपरी है, केवल सतही है। उनकी संरचना में कोई धार परिवर्तन देखने को नहीं मिला है।

शाह (2004) ने दलित अस्मिता और इनकी राजनीतिक सहभागिता से सम्बन्धित मुद्दे को सम्मिलित किया है जिनमें दलितों के लिए समानता, जाति व्यवस्था का कमजोर होना, सामाजिक गतिशीलता, राजनीतिक चेतना के विकास के बिन्दु शामिल किया गया है।

गुप्ता एवं ज्ञान सिंह बल (2011) ने दलित शिक्षा तथा स्वास्थ्य के मौलिक अधिकारों से वंचित तो पहले से ही रहे हैं। इस स्थिति के संदर्भ में उनकी शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर वैश्वीकरण के प्रभाव को समझने की आवश्यकता है। दलित और अन्य वर्गों में साक्षरता की दर और शिक्षा के स्तर में बड़ा अन्तर है। स्कूल छोड़ देने की ऊँची दर, शिक्षा की, घटिया गुणवत्ता, शिक्षा में विभेद आदि चंद शैक्षिक समस्याएँ हैं जिनसे अनुसूचित जाति आक्रान्त में रहती है।

नारायण (2010) ने अपने पर्सपेक्टिव फ्रामबिलों के परिप्रेक्ष्य के अध्ययन के आधार पर पाया कि उत्तर प्रदेश के किस प्रकार अनुसूचित जातियों में विशेषकर चमारों के समुदाय में 1950 के दशक के आस-पास जातिगत तथा परम्परागत व्यवसायों का विरोध करने के लिए आन्दोलन शुरू किये गये और ब्राह्मणवादी प्रभुत्व की चुनौती दी जाने लगी। नारा-मवेशी आन्दोलन के अनुसार चमार जाति के पुरुष मरे हुए पशुओं को उठाते थे तथा महिलाएँ शिशु के जन्म के समय नारा काटती थीं। इसका तीव्रतम विरोध चमार समुदायों के द्वारा विभिन्न प्रकार के शोषित नोड अपने समुदाय के उन लोगों पर लगाये जो अभी भी कुछ ऐसे लोग हैं जो उस व्यवसाय को करने की इच्छा रखते हैं।

भारती (2011) का मानना है कि "दलितों में प्रतिभा और हुनर की कमी नहीं है। वे अत्यन्त कुशल शिल्पी और निर्माता हैं लेकिन उनके पास पूंजी नहीं है। इसलिए वे कारीगर और श्रमिक ही बने हुए हैं, अपने शिल्प के स्वामी नहीं बन पाते हैं और जिनके पास पूंजी है, वे अत्यन्त सस्ते में माल तैयार करवाते हैं और स्वयं उसके व्यापार में भारी मुनाफा कमाते हैं। पूंजीपति की पूंजी दिन दूनी और रात चौगनी बढ़ती जाती है और शोषण के लिए अभिभूत कारीगर एवं श्रमिक गरीब रहते हैं।

चौधरी (2013) के अनुसार "अनुसूचित जातियों की संरचना में छोटा-मोटा परिवर्तन हो रहा है। भूण्डलीकरण, नगरीकरण, संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में इनके पारिवारिक, नातेदारी एवं वैवाहिक सम्बन्धों में परिवर्तन किया है और इन प्रक्रियाओं से प्रभावित भी हुए हैं।"

थोराट (2006) ने अपने अध्ययन 'नई आर्थिक नीति का अनुसूचित जाति की गरीबी और रोजगार का प्रभाव' में बताया है कि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के रोजगार के साथ कृषि आधारित ग्रामीण तथा शहरी अनौपचारिक रोजगार के अवसर में अनुसूचित जाति के लोगों की भागीदारी कम है। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा प्रधान रोजगार के कारण आर्थिक, शैक्षिक रूप से कमजोर अनुसूचित जाति के लोगों के रोजगार के अवसरों में कमी आयी है।

पाई (2022) के अनुसार "भारतीय राजनीति में कुछ दलित आत्मनिर्भर राजनैतिक दल हुए हैं जैसे इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी तथा शेडयूल्ड कॉस्ट फेडरेशन जिसका नेतृत्व अम्बेडकर ने किया। अम्बेडकर की संविधान निर्माण में नियुक्ति के बाद दलित पेंथर का गठन हुआ लेकिन इन सब में सामान्य बात यह थी कि वे सभी दल महाराष्ट्र के दलितों से सम्बन्धित हैं। बहुजन समाज पार्टी थी जो महाराष्ट्र से बाहर उत्तर प्रदेश में बनायी गयी। बहुजन समाज पार्टी के गठन ने दलितों में एक नई पहचान, जागरूकता, आत्मसम्मान के विकास और दलितों की चेतना को उच्च स्तर प्रदान किया।

आज हम वैश्वीकरण के दौर में जी रहे हैं। दुनिया के साथ हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाने का दावा कर रहे हैं लेकिन फिर भी यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में लगभग 2011 की जनगणना के अनुसार 16.6 प्रतिशत से अधिक दलित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शिक्षा से अभी भी वंचित हैं और अत्याधिक पिछड़े हुए हैं। प्रस्तुत शोध लेख में वैश्वीकरण के दौर में दलितों की प्रस्थिति एवं अस्मिता का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना है। इस अध्ययन के निम्नलिखित दो उद्देश्य हैं—

1. भारत में दलितों की सामाजिक प्रस्थितिका ऐतिहासिक विवेचना करना।
2. दलितों की शैक्षिक प्रगति का दशकीय आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण कर उनके शैक्षिक विकास का मूल्यांकन करना।

प्रस्तुत अध्ययन लेख में विशेष रूप से सबाल्टर्न परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया गया है और साथ में ही अन्तर्वस्तु विश्लेषण तथा अनुभावानात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। तथ्यों का संकलन द्वितीयक स्रोतों से लिया गया है।

दलित वह है जो सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से पिछड़े, आर्थिक रूप से कमजोर तथा सामाजिक संरचना की पदानुक्रम व्यवस्था में पिछड़ी अवस्था में है। इस संरचना की वजह से इनका शोषण हासियाकरण, दबाव, वंचना, अपमान, सामाजिक बहिष्करण तथा निरावेशन का सामना करना पड़ रहा है। प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था चातुर्वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। ये चार वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वैदिक काल में दलित, वर्ण व्यवस्था से बहिष्कृत थे। उन्हें 'अत्यंज', 'अस्पृश्य', वाह्य जातिया, 'दास' दस्यु, आदि नामों से सम्बन्धित किए गये। इतिहास के लम्बे काल खण्डों में इनको दी गयी संज्ञाएँ और विशेषण बदलते रहे लेकिन उनकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। दलित और वर्ण-व्यवस्था के अन्दर आने वाली जातियों के विभाजन का मुख्य आधार पवित्रता और अपवित्रता का विचार है। हिन्दू समाज में जिन पेशों को अपवित्र माना गया उन पेशों से सम्बन्धित जातियों को अपवित्र माना गया। उन जातियों के स्पर्श मात्र से अन्न, जल, वस्त्र, स्थान यहां तक कि मंदिर और ईश्वर भी अपवित्र हो जाते थे। दलित समुदाय जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे—अछूत, टूटे हुए, दबे-कुचले, अस्पृश्य, हरिजन, बहिष्कृत तथा अनुसूचित जाति।

दलितों की उत्पत्ति के बारे में चौधरी (2013) ने लिखा है कि दलित शब्द 1330 के दशक में उत्पन्न हुआ ये पहले की अस्पृश्य जातियां हैं जो आजकल अनुसूचित जाति में शामिल हैं। भिन्न समय में भिन्न नामों से जाना गया जैसे कि नरसिम्हा मेहता द्वारा प्रयोग किया गया शब्द "हरिजन" गांधी जी द्वारा लोक प्रिय बनाया गया था। 1951 के बाद इसको अनुसूचित जाति कहा जाने लगा। व्यूपिल ऑफ इण्डिया प्रोजेक्ट के अनुसार 750 दलित जातियां हैं।

अनुसूचित जाति की वर्तमान स्थिति के बारे में कोई एक निश्चित धारणा बनाना सरल नहीं है क्योंकि एक तो क्षेत्रीय विविधता व्यापक पैमाने पर मौजूद है और दूसरी और उनमें आ रही स्थिरता और परिवर्तन के बीच अनिश्चित संतुलन है। जहां तक अतीत में इनकी प्रस्थिति शुद्धता और प्रदूषण से तय होती थी। आज वह वोट की राजनीति जनतंत्र से तय हो रही है (बेन्ते, 2000)।

दलित ऐतिहासिक रूप से भूमिहीन या सीमान्त किसान रहे हैं और पर्याप्त भूमि सुधार के अभाव के कारण यह स्थिति आज भी यथावत है। 2009-10 के एन.एस.एस.ओ. से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 92.1 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवार या तो भूमिहीन या तो उनके पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है। उसकी वजह से दिहाड़ी मजदूरों में अनुसूचित जातियों की भरमार दिखाई देती है। 2009-10 में ग्रामीण क्षेत्रों में 59 प्रतिशत अनुसूचित जाति के मजदूर खेतीहर या गैर खेतीहर मजदूर थे जबकि कुल आबादी ऐसे मजदूरों की संख्या केवल 13.4 प्रतिशत थी (एन.एस.एस.ओ. 2012)।

1990 के बाद वैश्वीकरण प्रक्रियाओं के असर ने अनुसूचित जाति में सबसे गरीब को बुरी तरह से प्रभावित किया था और वह और ज्यादा गरीब हो गये। अध्ययनों ने गरीबी के फैलाव, बीमारी एवं मृत्यु और ग्रामीण बेरोजगारी के बढ़ते स्तर और मजदूरी में शोषण की ओर इशारा किया है। उन्होंने अनुसूचित जाति में वास्तविक मजदूरी उपभोक्ता साझेदारी और उपभोक्ता के प्रति मासिक व्यय के स्तर में भी गिरावट का दावा किया है (थोराट, 2010)

प्रसाद (2010) के अनुसार, "भारत की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों का हिस्सा 15.75 प्रतिशत है जिसमें 84 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों तथा 16 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। उनमें 28.5 प्रतिशत खेतीहर हैं। जबकि अधिकतर भूमिहीन हैं। 49.1 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 72 प्रतिशत आकस्मिक श्रमिक, 17.3 प्रतिशत औद्योगिक श्रमिक तथा 58.7 प्रतिशत बाल श्रमिक हैं।

दलित चिंतक सतीश (2021) कहते हैं कि, "उत्तर प्रदेश में वर्ष 2007 के चुनाव में तो सोशल इंजीनियरिंग ने कमाल दिखाया और बहुजन समाज पार्टी की पूर्ण बहुमत की सरकार बनी। अन्य एवं दलित वोट बैंक के दम पर मायावती चार बार प्रदेश की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री बनी। इसके साथ दलितों में राजनीतिक चेतना का अत्याधिक विकास हुआ।"

सोनिक (2013) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूल में दलित बच्चों का साथ जातीय भेदभाव की घटनाओं का होना आमबात है। करीब कुछ वर्षों पहले यू.जी.सी. के तत्कालीन चेयरमैन सुखदेव थोराट, घनश्याम शाह, सतीश पाण्डे, अमीता बाविष्कार और हर्ष मंडर द्वारा देश के 11 बड़े राज्यों के करीब 600 गांवों के स्कूल में जातीय भेदभाव को लेकर एक सर्वेक्षण कराया था। सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार करीब 40 फीसद सरकारी स्कूलों में दलित बच्चों को खाने के

समय अलग या पीछे बैठाया जाता है। सबसे आगे सवर्ण जाति के बैठते हैं यानि मिड-डे-मील का मकसद बेसक सभी वर्गों के बच्चों को समान रूप से भोजन उपलब्ध कराना हो। लेकिन गांव के अधिकांश स्कूलों में मिड-डे-मील परोसते वक्त बच्चों को वर्ण व्यवस्था के क्रम में बैठाया जाता है। इस रिपोर्ट के अनुसार करीब 20 फीसदी सरकारी स्कूलों में दलित बच्चों को सार्वजनिक स्रोतों से पानी नहीं पीने दिया जाता है। सांसदों के एक समूह ने भी दलित बच्चों के साथ हो रहे जातिगत भेदभाव के मुद्दे को मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सामने उठाया था।

सांथा कुमारी (1985) ने शिक्षा का प्रसार, जनतंत्रीय सुविधाएं, सरकार द्वारा चलाये गये कल्याण कार्यक्रम, औद्योगीकरण, नगरीयकरण, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण व आधुनिकीकरण आदि परिवर्तन की इन नवीन प्रक्रियाओं ने कुछ दशकों से दलितों के सामाजिक जीवन को बहुत कुछ परिवर्तित किया है। विशेष रूप से लोकतंत्रीय सुविधाओं और सरकार के कल्याण कार्यक्रमों में शैक्षिक एवं आर्थिक विकास के नवीन सम्पर्क में आने के अवसर मिले हैं। अपनी कक्षा के उच्च जाति के साथियों के साथ बैठने से उनका उच्च जातियों से सम्पर्क तो हुआ है और उनके व्यवहार प्रतिमानों को भी निकट देखने का अवसर मिला है। फलतः उन्होंने उच्च जातियों के कुछ व्यवहारों-प्रतिमानों को भी अपनाया है।

भारती (2021) ने अपने शोध अध्ययन में पाया है कि दलित लोग पिछले 8-10 सालों की अपेक्षा अब शिक्षा के प्रति जागरूक हो रहे हैं। ज्यादातर दलितों के घरों के बच्चे स्कूल जा रहे हैं और उच्च शिक्षा के लिए कॉलेज और विश्वविद्यालय जा रहे हैं और पहले से ज्यादा नौकरी कर रहे हैं। परन्तु कई तरह की सुविधाएं होने के बावजूद भी उच्च शिक्षा एवं नौकरी में उतना प्रतिनिधित्व नहीं है जितना दलितों में होना चाहिए।

निष्कर्ष से प्राप्त होता है कि गांव कैसे वैश्वीकरण के प्रभाव में आ रहे हैं तथा अपनी पहचान को खोते जा रहे हैं और परिवर्तित होते जा रहे हैं। समाज के सामाजिक मूल्यों, व्यवहारों विचारों और संस्कृति में परिवर्तन आ रहे हैं। परिवर्तनों ने गांव के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ताने-बाने को प्रभावित किया है। जाति व्यवस्था के कड़े प्रतिमान में परिवर्तन आया है। उस प्रकार उक्त लेख अध्ययन से पता चला है कि दलितों की प्रस्थिति में कुछ सुधार आया है जैसे कि दलित पढ़ने लिखने लगे हैं और आरक्षण का लाभ लेकर छात्रवृत्ति भी प्राप्त किये हैं और नौकरी भी करने लगे। लेकिन फिर भी शिक्षण संस्थानों में अभी-अभी कहीं-कहीं दलित बच्चों के साथ जातीय भेदभाव का शिकार होना पड़ता है चाहे वह शैक्षिक मूल्यांकन हो या चाहे मिड-डे मिल में भोजन परोसते समय, कक्षा में बैठने के लिए। अधिकांश दलितों के बच्चे चाहे प्राइमरी में, चाहे माध्यमिक में या उच्च शिक्षा में पढ़ाई छोड़कर अन्य कार्य में लग जाते हैं।

दलितों के पास अजीविका के लिए पर्याप्त रूप में कृषि नहीं है इसलिए वे दिहाड़ी मजदूरी या अन्य कार्य करके अपना जीवन यापन कर रहे हैं। सामाजिक सुधार आन्दोलनों की वजह से उनमें सामाजिक चेतना का विकास हुआ है चाहे वह महात्मा ज्योतिबा फुले का सत्यभोधक आन्दोलन, बी.आर. अम्बेडकर का आन्दोलन, कांशीराम का आन्दोलन हो इत्यादि महापुरुष हो। खासकर उत्तर भारत में नारा मवेशी आन्दोलन की वजह से चमार जाति में भी चेतना का विकास हुआ है। दलितों को अपनी संस्कृति को जागृति एवं सम्मानित करना चाहिए। दलितों और उच्च जातियों के बीच संवाद आयोजित किए जाने चाहिए। उच्च जातियों को चाहिए कि उनके बच्चों को छोटी उपलब्धि को भी बढ़ा-चढ़ाकर सम्मान दें। सरकार को चाहिए कि दलितों के उत्थान के लिए आर्थिक कार्यक्रमों के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलायें।

दलितों को आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी आरक्षण की व्यवस्था लागू की जानी चाहिए। भारत की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक न्याय के पक्ष की विवेचना से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में दलितों के साथ अन्याय ज्यादा न्याय कम हुआ है। आज भी ग्रामीण अंचलों में जातिगत उत्पीड़न बढ़ते जा रहा है। कुछ लोग 1989 के शेड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शेड्यूल्ड ट्राइबस (प्रिवेन्सी ऑफ एट्रोसिटीस) एक्ट का फायदा उठाये हैं। ज्यादातर गरीब दलित इसका फायदा नहीं उठा पा रहे हैं। इसका मुख्य कारण अशिक्षिता, अजागरूकता एवं प्रेरणा की कमी है। प्रेरणा का अर्थ है कि आकांक्षाओं का स्तर को आगे बढ़ाने की उम्मीद की कमी है।

अस्मिता के संदर्भ में आन्दोलन तो हो रहा है, लोगों में गुस्सा तो आ रहा है, सरकार विशिष्ट संघटक कार्यक्रम कर रहे हैं, अलग से अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग बन गया लेकिन अब भी मेहतर पैखाने का मैला ढो रहे हैं। नागरिक समाज में कई कदम उठाये हैं जैसेकि बिन्देश्वरी पाठक का सुलभ शौचालय जहां पर कई मैथली ब्राह्मणों को नौकरी मिला है, लेकिन गरीब दलितों पर कोई खास प्रभाव नहीं हुआ है। दलित अस्मिता की ओर हर तरफ से जागरूकता तो बढ़ा है, लेकिन गरीबों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। यह सुधार तभी सम्भव है जब उनमें कुछ आधुनिकीकरण के मानसिकता एवं क्रियान्वयन वास्तविक रूप से भामिल होगा।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :**

- चौधरी, सुकान्त. के. 2013. "इंट्रोडक्शन", *अम्बेडकर एण्ड फ्यूचर ऑफ दलित (सम्पा.)*, नई दिल्ली : सीरियल्स पब्लिकेशंस.
- बेत्ते, ए. 2002. *कास्ट इनिक्वॉलिटी एण्ड आईटी एक्शन जिनेवा*: इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट फार लेबर स्टडिज.
- नारायण, बद्री, 'हीस्ट्री प्रोड्यूस पोलिटीक्स : दि नारामवेशी मोमेन्ट इन उत्तर प्रदेश, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वोल XIV नं. 40, 2010 पी.पी. 111-119.
- गिडेन्स, एन्थोनी. 1990, *द कान्सीक्वेन्सेस ऑफ मार्डनिटी*, स्टेनफोर्ड सी.ए. : स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- भारती, कवल. 2011. *स्वामी अछूतानन्द हरिहर और हिन्दी नवजागरण*, नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन।
- थोराट, सुखदेव. 2006, "वैश्वीकरण, भारत एवं दलित संस्कृति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, युद्धरत आम आदमी", दलित दर्शन विशेषांक।
- थोराट, सुखदेव. 2011, *दलित इन इण्डिया : सर्च फॉट ए कॉमन डेस्टिनी नई दिल्ली* : सेज पब्लिकेशंस।
- पाई, सुधा. 2002, *दलित असर्सन एण्ड द आर्गनाइज डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन, नई दिल्ली* : सेज पब्लिकेशंस.
- प्रसाद, माता. 2010. *भारत में दलित जागरण और इसके अग्रदूत*, नई दिल्ली, : सम्यक प्रकाशन।
- सोननिक, ओ.पी. 2013, सहारा सम्पादकीय, फरवरी 2013
- शाह, घनश्याम (सम्पा). 2004, *दलित आइडेंटिटी एण्ड पॉलिटिक्स*, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस।
- प्रकाश, सतीश 2021 अमर उजाला 21 दिसम्बर 2021 पेज नं. 11
- ओमवेट, गेल 2009. *दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति* : उपनिवेशीय भारत में डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन (*अनु० नरेश भार्गव*). नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशंस.
- कुमार, अरुण, 2014. *उदारीकरण, भूमण्डलीकरण एवं दलित*. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशंस
- सांथा कुमारी, आर० 1985. *शेड्यूल कॉस्टस एण्ड वेलफेयर मेजर्स*. नई दिल्ली : क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी.
- भारती, सूर्यकान्त. 2021. "वैश्वीकरण के दौर में दलितों की प्रस्थिति एवं अस्मिता : उत्तर प्रदेश के दो जिले के विशेष सन्दर्भ में", अप्रकाशित. समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय. लखनऊ
- गुप्ता, रमणिका एवं ज्ञान सिंह बल (सम्पा) 2011, *दलित दर्शन (सह संपादक द्वारिका भारती)*, दिल्ली, नेहा प्रकाशन
- [www.census2011.co.in/city.php](http://www.census2011.co.in/city.php)